नईदुनिया

संपादकीय

जब रक्षक ही साइबर शिकारी बन जाएं

अमेरिका ने साइबर सुरक्षा के क्षेत्र में ऐसा कदम उठाया है, जिसकी सबसे ज्यादा आलोचना वह अब तक चीन और रूस पर करता रहा है। वाशिंगटन ने तय किया है कि अब अपनी साइबर सुरक्षा के लिए निजी कंपनियों और ठेकेदारों की मदद ली जाएगी। यानी विदेशी साइबर अपराधी संगठनों के खिलाफ साइबर कार्रवाई में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ेगी। कल तक जो अमेरिका दुनिया भर में हैकिंग को अनैतिक और गैरकानूनी बताता था, आज वही आक्रामक साइबर क्षमताओं के इस्तेमाल की दिशा में आगे बढ़ रहा है। सरकार का तर्क है कि चीन और रूस वर्षों से साइबर हमलों का सहारा लेते रहे हैं, इसलिए अमेरिका को भी जवाबी हथियार चाहिए।

अब तक अमेरिका का आधिकारिक रुख यह था कि साइबर हमले अस्वीकार्य हैं और इंटरनेट को हथियार बनने से रोकना जरूरी है। लेकिन आज उसी अमेरिका ने मान लिया है कि साइबर युद्ध का मैदान पारंपरिक युद्ध से कम महत्वपूर्ण नहीं है। सवाल यह है कि जब रक्षक ही वही हथियार उठा ले, जिसे वह गलत बताता रहा है, तो दुनिया किसे सही मानेगी?

चीन और रूस पर आरोप लगाना आसान था, क्योंकि वे राज्य-प्रायोजित हैकिंग के लिए बदनाम रहे हैं। अमेरिका कहता था कि वहां की सरकारी एजेंसियां निजी हैकरों को संरक्षण देती हैं। अब अमेरिका भी निजी क्षेत्र को साइबर अभियानों में शामिल कर रहा है। अंतर सिर्फ इतना है कि नाम बदल गया है - भाड़े के शिकारी ठेकेदार बन बैठे हैं।

साइबर सुरक्षा में निजी कंपनियों की बढ़ती भूमिका कई जोखिम पैदा करती है। पहली बात जवाबदेही की है। अगर कोई निजी कंपनी गलती से किसी अस्पताल या स्कूल के सर्वर को निशाना बना देती है तो जिम्मेदार कौन होगा? दूसरी बात गोपनीयता की है। ठेकेदारों के पास सरकार का संवेदनशील डेटा होगा और उसके लीक होने का खतरा बना रहेगा। तीसरी बात नियंत्रण की है। एक बार जब ऐसी शक्ति निजी हाथों में चली गई तो उसे नियंत्रित करना मुश्किल हो सकता है।

जब भी युद्ध का निजीकरण हुआ है, उसके दुरुपयोग के उदाहरण सामने आए हैं। ब्लैकवाटर जैसी कंपनियों ने इराक में जो किया, वह सबको याद है। अब वही मॉडल साइबर दुनिया में दोहराए जाने का खतरा है। फर्क सिर्फ इतना है कि यहां गोली नहीं, कोड चलेंगे।

अमेरिका के इस फैसले का असर केवल अमेरिका तक सीमित नहीं रहेगा। जब दुनिया की बड़ी ताकत विदेशी साइबर ढांचे के खिलाफ आक्रामक कार्रवाई को उचित ठहराएगी तो दूसरे देश भी अपने तर्क देंगे। नतीजा यह हो सकता है कि इंटरनेट युद्ध का मैदान बन जाए, जहां सीमाएं और नियम कमजोर पड़ जाएं।

भारत के लिए यह घटनाक्रम गंभीर है। हमारा बैंकिंग तंत्र, अस्पताल, रेल और बिजली ग्रिड तेजी से डिजिटल हो रहे हैं। ऐसे में भारत को अपनी साइबर ढाल मजबूत करनी होगी और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर साइबर युद्ध के बढ़ते खतरे का विरोध करना होगा। साइबर सुरक्षा का मतलब सिर्फ हमला करना नहीं, बचाव, डेटा की सुरक्षा और आम नागरिक के अधिकारों की रक्षा भी है। दुनिया को साइबर हथियारों की दौड़ नहीं, साइबर शांति की जरूरत है। संयुक्त राष्ट्र के तहत बाध्यकारी समझौता होना चाहिए, जिसमें नागरिक ढांचे पर साइबर हमले को गंभीर अपराध माना जाए।

अमेरिका ने दरवाजा खोल दिया है। अब देखना यह है कि वह इस रास्ते से सुरक्षा की ओर जाता है या विनाश की ओर। अगर रक्षक ही शिकारी बन गया तो फिर दुनिया किससे अपनी रक्षा मांगेगी?

आजकल

गरीबी की गली में करोड़ों पर सवाल

गोपालगंज के तिली क्षेत्र में पुलिस अवैध हथियार की तलाश में पहुंची थी, लेकिन चार बैगों में भरी करीब तीन करोड़ रुपये की नकदी बरामद होना कहीं बड़ा सवाल छोड़ गया। जिस घर की रोजी-रोटी ऑटो चलाने और दूसरों के घरों में काम करने से चलती थी, वहां इतनी बड़ी रकम मिलना आर्थिक असमानता से आगे बढ़कर कालेधन और अवैध कारोबार के संभावित नेटवर्क की ओर इशारा करता है। नोट गिनने के लिए मशीनें मंगवानी पड़ीं और गली को सील करना पड़ा। यह बरामदगी अपने आप में गंभीर है, लेकिन इससे भी गंभीर है इस रकम का स्रोत।

परिवार का दावा है कि नकदी किसी रिश्तेदार की है और करीब एक महीने पहले यहां रखी गई थी। जांच एजेंसियों को अब इसी दावे की तह तक जाना होगा। इतनी बड़ी रकम बैंकिंग व्यवस्था से बाहर रखे जाने का कारण क्या था? क्या इसका संबंध हवाला, अवैध कारोबार या किसी अन्य आपराधिक गतिविधि से है? इन सवालों के जवाब केवल नकदी की बरामदगी से नहीं, बल्कि उसके पूरे लेन-देन की पड़ताल से मिलेंगे।

इस घटना का एक चिंताजनक पहलू सोशल मीडिया भी है। हथियार की तस्वीर सामने आने के बाद पुलिस कार्रवाई हुई। आज हथियार और अवैध धन का प्रदर्शन केवल दिखावे तक सीमित नहीं है, बल्कि यह अपराधी नेटवर्क के प्रचार और युवाओं को आकर्षित करने का माध्यम भी बन सकता है।

सबसे जरूरी बात यह है कि जांच केवल बरामदगी तक सीमित न रहे। पुलिस, आयकर विभाग और अन्य संबंधित एजेंसियों को मिलकर रकम के स्रोत, लेन-देन और संभावित नेटवर्क की जांच करनी चाहिए। तिली की यह घटना बताती है कि कालेधन की जड़ें केवल बड़े शहरों या आलीशान ठिकानों तक सीमित नहीं हैं। छोटी गलियों में छिपी बड़ी रकम को पकड़ना तभी सार्थक होगा, जब उसके पीछे छिपे पूरे तंत्र तक पहुंचा जाए।

32 करोड़ सपने अधर में, दुनिया का युवा वर्ग बेरोजगारी के भंवर में

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की नई रिपोर्ट ने दुनिया भर में सन्नाटा पैदा कर दिया है। रिपोर्ट के आंकड़े चीख-चीख कर कह रहे हैं कि 2026 तक दुनिया में 32 करोड़ 40 लाख युवा या तो बेरोजगार होंगे या ऐसी हालत में होंगे, जहां न पढ़ाई है, न नौकरी है और न कोई कौशल प्रशिक्षण है। इनमें 6 करोड़ 70 लाख युवा पूरी तरह बेरोजगार होंगे और 25 करोड़ 70 लाख युवा उस खतरनाक श्रेणी में होंगे, जिसे एनईईटी कहा जाता है, यानी न शिक्षा, न रोजगार, न प्रशिक्षण। यह केवल आंकड़ा नहीं है, यह एक पूरी पीढ़ी का संकट है, जो हमारे दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। यह समस्या किसी एक देश की सीमा में नहीं बंधी है, लेकिन भारत जैसे युवा देश के लिए यह सबसे बड़ा अलार्म है। दुनिया में 15 से 24 साल के युवाओं की सबसे बड़ी आबादी एशिया में बसती है और उसका बड़ा हिस्सा भारत में है। हमारे पास दुनिया का सबसे बड़ा युवा बल है, जिसे हम जनसांख्यिकीय लाभांश कहते हैं, लेकिन अगर समय रहते रोजगार नहीं बने तो यही लाभांश सबसे बड़ा बोझ बन जाएगा। आईएलओ की रिपोर्ट बताती है कि 2023 से 2025 के बीच युवा बेरोजगारी में 2.5 करोड़ की बढ़ोतरी हुई है। 2023 में बेरोजगारी दर 12.3 फीसदी थी, जो 2025 में 12.4 फीसदी हो गई है। यह 0.1 फीसदी की बढ़त नहीं है, इसके पीछे लाखों टूटे हुए सपने और बिखरे हुए परिवार हैं। रिपोर्ट जब बेरोजगारी के कारणों को खंगालती है तो सबसे पहले सामने आता है शिक्षा और उद्योग के बीच का फासला। आज कंपनियों को डिजिटल स्किल, एआई, डेटा साइंस और नई तकनीक वाले लोग चाहिए, लेकिन हमारे कॉलेज और आईटीआई अभी भी 20 साल पुराने सिलेबस पढ़ा रहे हैं। युवा डिग्री लेकर निकलते हैं, लेकिन इंटरव्यू में फेल हो जाते हैं। दूसरी तरफ उद्योगपति कहते हैं कि उन्हें कुशल लोग नहीं मिल रहे, इसलिए हजारों पद खाली पड़े हैं। यह दोहरा संकट है। एक तरफ बेरोजगार युवा, दूसरी तरफ बिना भरे पद। यह खाई जितनी जल्दी नहीं पटी, उतनी जल्दी संकट गहराएगा।

महिलाओं और ग्रामीण युवाओं का पीछे छूट जाना भी चिंता का विषय है। आंकड़े बताते हैं कि महिलाओं में बेरोजगारी 12.1 फीसदी है और पुरुषों में 12.6 फीसदी है, लेकिन असली फर्क श्रम बल में भागीदारी का है। पढ़ाई पूरी करने के बाद बहुत सी लड़कियां घर की चारदीवारी में लौट जाती हैं, क्योंकि उनके लिए सुरक्षित परिवहन, सम्मानजनक काम और लचीले घंटे वाले रोजगार नहीं हैं। इसी तरह गांवों में 20 से 24 साल के युवाओं के पास अवसर सबसे कम हैं। खेती से हटकर उनके पास दूसरा विकल्प नहीं है और स्थानीय उद्योग-धंधे सीमित हैं। नतीजा पलायन या बेरोजगारी। सबसे तेज हमला तकनीक का है। ऑटोमेशन, रोबोटिक्स और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने एंट्री लेवल की नौकरियां छीन ली हैं। पहले बैंक में क्लर्क, ग्राहक सेवा में कॉल सेंटर और फैक्ट्री में हेल्पर की नौकरियां 10वीं-12वीं पास युवा कर लेते थे। अब वही काम एक सॉफ्टवेयर कर देता है। जो युवा नई तकनीक के साथ नहीं चल पाए, वे बाजार से बाहर हो गए। यह बदलाव इतनी तेजी से आया कि शिक्षा व्यवस्था और प्रशिक्षण केंद्र उसके साथ कदम नहीं मिला पाए। रिपोर्ट का सबसे डराने वाला हिस्सा एनईईटी युवाओं का है। दुनिया में 25 करोड़ 70 लाख युवा न पढ़ रहे हैं, न कमा रहे हैं, न कोई हुनर सीख रहे हैं। भारत में भी यह संख्या करोड़ों में है। ये वे युवा हैं, जो सिस्टम से हार मान चुके हैं। निराशा ने उन्हें जकड़ लिया है। आर्थिक तंगी के साथ सामाजिक उपेक्षा भी जुड़ जाती है। ऐसे युवाओं में नशे, अपराध और मानसिक अवसाद का खतरा सबसे ज्यादा होता है। एक बेरोजगार युवा केवल अपने लिए समस्या नहीं बनता, वह पूरे समाज के लिए चुनौती बन जाता है। आईएलओ ने साफ चेतावनी दी है कि अगर इसी रफ्तार से चीजें चलीं तो 2027 तक बेरोजगार युवाओं की संख्या में 90 लाख की और बढ़ोतरी हो जाएगी। यह चेतावनी हमें सोचने पर मजबूर करती है कि हम क्या कर रहे हैं और क्या करना चाहिए। रिपोर्ट में कुछ ठोस रास्ते भी सुझाए गए हैं। पहला रास्ता है शिक्षा को रोजगार से जोड़ना। स्कूल से ही व्यावसायिक शिक्षा, कौशल विकास और इंटर्नशिप अनिवार्य करनी होगी। दूसरा रास्ता है एमएसएमई को ताकत देना। बड़े उद्योग जितनी नौकरी नहीं दे सकते, उतनी छोटे और मझोले उद्योग दे सकते हैं। उन्हें सस्ता कर्ज और बाजार चाहिए। तीसरा रास्ता है भविष्य के क्षेत्रों में निवेश करना। ग्रीन एनर्जी, सोलर, विंड, ई-वाहन और डिजिटल अर्थव्यवस्था में अगले 10 साल में करोड़ों नौकरियां बनेंगी। भारत को उस दौड़ में सबसे आगे रहना होगा।

भारत के नजरिए से देखें तो हमारे पास समय बहुत कम है। हमारे पास दुनिया की सबसे युवा आबादी है, लेकिन उसे अवसर नहीं मिला तो वह निराशा में बदल जाएगी। नई शिक्षा नीति में कौशल और प्रयोग पर जोर है, लेकिन उसे हर जिले, हर ब्लॉक तक ले जाना होगा। आईटीआई और पॉलिटेक्निक को उद्योगों के साथ पार्टनरशिप करनी होगी। हर जिले में करियर काउंसलिंग और रोजगार मेले लगने चाहिए। स्टार्टअप इकोसिस्टम को और मजबूत करना होगा, ताकि युवा नौकरी मांगने वाले नहीं, बल्कि नौकरी बनाने वाले बनें।

समाज को भी अपनी सोच बदलनी होगी। माता-पिता को यह मानना होगा कि सफलता का मतलब सिर्फ डॉक्टर या इंजीनियर बनना नहीं है। कला, शिल्प, कृषि प्रसंस्करण, पर्यटन और सेवा क्षेत्र में भी इज्जत और आमदनी दोनों हैं। अगर युवा अपनी रुचि के हिसाब से हुनर सीखेंगे तो वे न केवल अपना पेट भरेंगे, बल्कि देश की अर्थव्यवस्था को भी गति देंगे। 32 करोड़ 40 लाख का आंकड़ा केवल एक संख्या नहीं है। यह 32 करोड़ परिवारों की उम्मीद है। यह 32 करोड़ माताओं के आंसू और पिता के संघर्ष की कहानी है। अगर हमने आज कदम नहीं उठाए तो कल यह युवा शक्ति बोझ बन जाएगी, लेकिन अगर हमने सही नीति, सही निवेश और सही इरादे से काम किया तो यही युवा भारत को दुनिया की सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति बना सकते हैं।

रिपोर्ट हमें डराने के लिए नहीं आई है, वह हमें जगाने के लिए आई है। अब गेंद सरकार, उद्योग, शिक्षण संस्थानों और समाज सभी के पाले में है। अगर हम मिलकर शिक्षा को कौशल से जोड़ें, रोजगार को गांव तक ले जाएं और महिलाओं को बराबर अवसर दें तो यह संकट अवसर में बदल सकता है। वरना इतिहास हमें माफ नहीं करेगा, क्योंकि हमने अपने सबसे बड़े संसाधन यानी युवाओं को ही नजरअंदाज कर दिया।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

अमेरिका की सख्ती से भारतीय छात्रों का अमेरिका जाने का सपना संकट में

अमेरिका में 2026 का शैक्षणिक सत्र शुरू होने में अभी कुछ महीने बाकी हैं, लेकिन उससे पहले ही भारतीय छात्रों के सामने सबसे बड़ी बाधा खड़ी हो गई है। वह बाधा है वीजा अपॉइंटमेंट की लंबी प्रतीक्षा और कड़ी जांच प्रक्रिया। अमेरिका के विदेश विभाग ने छात्र वीजा, एफ, एम और जे वीजा के लिए इंटरव्यू अपॉइंटमेंट की प्रक्रिया को इतना कड़ा और धीमा कर दिया है कि हजारों भारतीय छात्र इस बार समय पर अमेरिका नहीं पहुंच पाएंगे। विदेश में पढ़ाई का सपना देखने वाले मध्यमवर्गीय परिवारों के लिए यह झटका किसी बड़े संकट से कम नहीं है।

समस्या की शुरुआत वीजा प्रक्रिया में देरी से हुई है। आमतौर पर हर साल मई से जुलाई के बीच छात्र वीजा इंटरव्यू के अपॉइंटमेंट मिलने लगते थे और अगस्त तक अधिकांश छात्र अमेरिका पहुंच जाते थे। लेकिन इस बार स्थिति बिल्कुल अलग है। दिल्ली, मुंबई, चेन्नई, कोलकाता और हैदराबाद के अमेरिकी दूतावासों में अपॉइंटमेंट के लिए महीनों की वेटिंग चल रही है। कई छात्रों को अक्टूबर-नवंबर तक की तारीख मिल रही है, जबकि उनका सेमेस्टर सितंबर में शुरू हो जाएगा। इसका सीधा मतलब है कि इस बार हजारों भारतीय छात्र अपना एक साल गंवा सकते हैं। इस देरी के पीछे अमेरिकी सरकार की नई नीति है। विदेश विभाग ने कहा है कि अब हर छात्र की पृष्ठभूमि की गहन जांच होगी। इसमें सोशल मीडिया की जांच, शैक्षणिक रिकॉर्ड का सत्यापन और इंटरव्यू में कड़े सवाल शामिल हैं। अधिकारियों का कहना है कि यह कदम सुरक्षा के कारण उठाया गया है, लेकिन छात्रों और अभिभावकों का मानना है कि यह जानबूझकर प्रक्रिया को धीमा करने की साजिश है। नतीजा यह है कि पहले जहां 15 दिन में वीजा मिल जाता था, अब दो से तीन महीने लग रहे हैं।

भारतीय छात्रों के लिए अमेरिका हमेशा से उच्च शिक्षा का सबसे बड़ा गंतव्य रहा है। इंजीनियरिंग, कंप्यूटर साइंस, डेटा साइंस और एमबीए जैसे कोर्सों के लिए हर साल लाखों भारतीय अमेरिका जाते हैं। 2023 के आंकड़ों के अनुसार अमेरिका में 3 लाख 30 हजार से ज्यादा भारतीय छात्र पढ़ाई कर रहे थे और हर साल यह संख्या बढ़ रही थी। लेकिन अब वीजा की अनिश्चितता के कारण कई छात्र अपना एडमिशन टालने या दूसरे देशों का रुख करने पर मजबूर हैं। कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और यूरोप के देश इस स्थिति का फायदा उठाकर भारतीय छात्रों को आकर्षित कर रहे हैं।

वीजा देरी का सबसे बड़ा असर मध्यम वर्ग पर पड़ा है। एक भारतीय छात्र अमेरिका में पढ़ाई के लिए 30 से 50 लाख रुपये तक खर्च करता है। इसमें ट्यूशन फीस, रहने का खर्च और वीजा फीस शामिल है। इसके लिए परिवार सालों तक बचत करते हैं और कई बार कर्ज भी लेते हैं। जब वीजा समय पर नहीं मिलता तो एडमिशन फीस डूब जाती है, हॉस्टल की बुकिंग कैंसिल होती है और फ्लाइट के टिकट महंगे हो जाते हैं। सबसे बड़ा नुकसान एकेडमिक साल का होता है। एक साल पीछे जाने का मतलब है करियर में एक साल की देरी। शिक्षा सलाहकारों का कहना है कि इस बार स्थिति 2020 के कोरोना काल से भी खराब है। उस समय उड़ानें बंद थीं, लेकिन प्रक्रिया स्पष्ट थी। इस बार उड़ानें हैं, विश्वविद्यालय खुले हैं, लेकिन वीजा नहीं मिल रहा है। कई विश्वविद्यालयों ने भारतीय छात्रों के लिए डिफर्ड एडमिशन का विकल्प देना शुरू कर दिया है, यानी इस साल की जगह अगले साल जनवरी या अगले सेमेस्टर में पढ़ाई शुरू करना। लेकिन हर छात्र एक साल इंतजार नहीं कर सकता। इस संकट का एक और पहलू है मानसिक तनाव। छात्र और अभिभावक दोनों अनिश्चितता में जी रहे हैं कि अपॉइंटमेंट मिलेगा या नहीं, वीजा मिलेगा या नहीं। सोशल मीडिया पर हर दिन नई-नई अफवाहें और डर फैल रहे हैं। कुछ एजेंट गलत जानकारी देकर मोटी फीस वसूल रहे हैं। कई छात्र रात-रात भर जागकर पोर्टल पर अपॉइंटमेंट स्लॉट चेक कर रहे हैं। यह स्थिति न केवल आर्थिक, बल्कि मानसिक रूप से भी तोड़ने वाली है।

भारत सरकार ने भी इस मुद्दे को गंभीरता से लिया है। विदेश मंत्रालय ने अमेरिकी दूतावास से बात करके प्रक्रिया तेज करने की मांग की है। भारतीय दूतावास, वाशिंगटन में भी छात्रों की मदद के लिए हेल्पलाइन शुरू की गई है, लेकिन जमीनी स्तर पर अभी कोई बड़ा बदलाव नहीं दिख रहा है। अमेरिकी पक्ष का कहना है कि उनके पास स्टाफ की कमी है और सुरक्षा जांच के कारण समय लग रहा है, लेकिन विशेषज्ञ मानते हैं कि यह राजनीतिक कारणों से भी जुड़ा हो सकता है।

इस पूरे घटनाक्रम से एक बड़ा सवाल उठता है कि क्या अमेरिका अब भारतीय छात्रों के लिए पहले जैसा आकर्षक गंतव्य रहेगा? पिछले कुछ सालों में अमेरिका में नस्लीय हमले, वीजा नियमों में बदलाव और नौकरी के अवसरों में कमी के कारण पहले ही छात्रों में असंतोष था। अब वीजा की देरी ने आग में घी का काम किया है। कई छात्र अब जर्मनी, फ्रांस, आयरलैंड और सिंगापुर जैसे देशों को विकल्प के रूप में देख रहे हैं, जहां वीजा प्रक्रिया तेज है और पढ़ाई के बाद काम करने की सुविधा भी है।

अमेरिका की शिक्षा की गुणवत्ता और रिसर्च के अवसर अभी भी दुनिया में सबसे बेहतर हैं, इसलिए पूरी तरह से रुझान बदलने में समय लगेगा। फिर भी अगर अमेरिका ने समय रहते अपनी वीजा नीति में लचीलापन नहीं दिखाया तो भारत जैसे बड़े बाजार को वह खो सकता है। भारत अमेरिका के विश्वविद्यालयों के लिए सबसे बड़ा फीस देने वाला बाजार है और भारतीय छात्रों के बिना कई विश्वविद्यालयों का बजट गड़बड़ा सकता है।

इस समस्या से निपटने के लिए छात्रों को क्या करना चाहिए? पहला तो यह कि वे समय से पहले आवेदन करें और सभी दस्तावेज तैयार रखें। दूसरा, विकल्प देशों पर भी विचार करें। तीसरा, विश्वविद्यालय से संपर्क करके डिफर्ड एडमिशन या ऑनलाइन कक्षाओं का विकल्प मांगें और सबसे जरूरी, घबराएं नहीं और अफवाहों पर ध्यान न दें। सरकारी और विश्वविद्यालय की आधिकारिक वेबसाइट से ही जानकारी लें।

शिक्षा को राजनीति और सुरक्षा के नाम पर बंधक नहीं बनाया जाना चाहिए। अमेरिका और भारत के बीच शिक्षा और संस्कृति का रिश्ता दशकों पुराना है। हजारों भारतीय वैज्ञानिक, डॉक्टर और उद्यमी अमेरिका में पढ़कर वहां की तरक्की में योगदान दे चुके हैं। अगर वीजा की दीवार और ऊंची हुई तो दोनों देशों को नुकसान होगा। अमेरिका को प्रतिभा नहीं मिलेगी और भारत के युवाओं का सपना अधूरा रह जाएगा।

अभी भी समय है। अमेरिका को अपनी प्रक्रिया को पारदर्शी और तेज बनाना होगा और भारत को अपने छात्रों के लिए वैकल्पिक रास्ते तैयार करने होंगे, क्योंकि एक छात्र का एक साल बर्बाद होना केवल उसका नुकसान नहीं है, वह पूरे देश की प्रगति का नुकसान है। उम्मीद है कि आने वाले हफ्तों में दोनों देश मिलकर इसका समाधान निकालेंगे, ताकि सितंबर में क्लासरूम में भारतीय छात्रों की सीटें खाली न रहें।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

थाली का सच, पैकेट में बंद धोखा, लेबल पर अटका भारत का स्वास्थ्य

सुप्रीम कोर्ट ने जो कहा, वह केवल एक कानूनी टिप्पणी नहीं थी, बल्कि देश की रसोई में बजने वाली खतरे की घंटी थी। अदालत ने ज्यादा चीनी, ज्यादा नमक और ज्यादा सैचुरेटेड फैट वाले पैकेज्ड खाद्य पदार्थों पर सामने की ओर चेतावनी लेबल लगाने में हो रही देरी पर केंद्र सरकार और खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (एफएसएसएआई) को फटकार लगाई और दो हफ्ते का आखिरी मौका दे दिया। जस्टिस जे. बी. पारदीवाला और जस्टिस के. विनोद चंद्रन की पीठ ने साफ कहा कि सार्वजनिक स्वास्थ्य से कोई समझौता नहीं होगा, खासकर तब, जब दांव पर देश के बच्चों का भविष्य हो।

हर उस घर का मामला है, जहां सुबह पैकेट वाला सीरियल खुलता है, जहां बच्चे चिप्स और जूस की जिद करते हैं और जहां थकान के बाद रेडी-टू-ईट भोजन को रात का खाना मान लिया जाता है। हम आधुनिकता के नाम पर अपनी थाली में ऐसा भोजन परोस रहे हैं, जिसका नुकसान धीरे-धीरे सामने आता है। उपभोक्ता को इसकी पूरी जानकारी नहीं मिलती, क्योंकि पैकेट पर सच छोटे अक्षरों में और पीछे की तरफ छिपा रहता है। एक मां को लगता है कि वह बच्चे के लिए पौष्टिक चीज खरीद रही है, लेकिन उत्पाद में मौजूद चीनी, नमक और वसा की मात्रा उसकी जानकारी में स्पष्ट नहीं होती।

सुप्रीम कोर्ट ने सवाल उठाया कि आखिर एफएसएसएआई कर क्या रही है? अगर पैकेट के सामने लाल रंग की स्पष्ट चेतावनी होगी तो खरीदने से पहले उपभोक्ता रुकेगा, सोचेगा और शायद बेहतर विकल्प चुनेगा। यह छोटी-सी जानकारी स्वास्थ्य की रक्षा में भूमिका निभा सकती है। अदालत ने उद्योग की दलील को खारिज करते हुए साफ किया कि मुनाफा जीवन से ऊपर नहीं हो सकता।

वर्षों से डॉक्टर, पोषण विशेषज्ञ और उपभोक्ता संगठन मांग कर रहे हैं कि भारत में भी फ्रंट-ऑफ-पैक लेबलिंग की प्रभावी व्यवस्था हो। चिली में काले अष्टकोण के जरिए अधिक चीनी और अधिक सोडियम की चेतावनी दी जाती है। ब्राजील में चेतावनी का त्रिकोण है। इन देशों में नियम लागू होने के बाद कंपनियों ने अपने उत्पादों में सुधार किया। भारत में एफएसएसएआई ने 2022 में ड्राफ्ट नियम जारी किए थे, लेकिन निर्णय में लगातार देरी हुई। फाइलें और बैठकें चलती रहीं, पर व्यवस्था आगे नहीं बढ़ी।

देरी ऐसे समय में हो रही है, जब

सुप्रीम कोर्ट की सख्त फटकार

डायबिटीज, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप और मोटापा बड़ी स्वास्थ्य चुनौतियां बन चुके हैं। अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड सस्ता है, आसानी से उपलब्ध है और उसके विज्ञापन लगातार टीवी तथा मोबाइल पर दिखाई देते हैं। बच्चों और युवाओं को इसके प्रभाव से बचाने के लिए केवल परिवार की जिम्मेदारी पर्याप्त नहीं है। नियामक व्यवस्था को भी मजबूत होना होगा।

सुप्रीम कोर्ट ने दो हफ्ते का समय देकर सरकार को कठघरे में खड़ा किया है। यह समय केवल जवाब देने का नहीं, निर्णय लेने का है। लेबल लगने से सबसे पहले उपभोक्ता का व्यवहार बदल सकता है। जब किसी उत्पाद के सामने स्पष्ट चेतावनी होगी तो माता-पिता और युवा खरीदने से पहले उसके बारे में सोचेंगे। उद्योग पर भी स्वस्थ विकल्प देने का दबाव बढ़ेगा और कंपनियां चीनी-नमक कम कर उत्पादों की गुणवत्ता सुधारने को मजबूर होंगी। ऐसी प्रतिस्पर्धा अंततः उपभोक्ता के हित में होगी।

लेकिन केवल लेबल काफी नहीं है। स्कूलों में पोषण शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए और बच्चों को पैकेट पर लिखी जानकारी समझना सिखाया जाना चाहिए। जंक फूड के उन विज्ञापनों पर नियंत्रण जरूरी है, जो कार्टून और खिलाड़ियों के माध्यम से बच्चों को लक्षित करते हैं। छोटे दुकानदारों और निर्माताओं को सस्ते और स्वस्थ विकल्प उपलब्ध कराने में मदद भी दी जानी चाहिए, ताकि स्वास्थ्यवर्धक भोजन केवल महंगे वर्ग तक सीमित न रह जाए।

एफएसएसएआई का काम खाद्य गुणवत्ता तय करना, उपभोक्ता को जानकारी देना और उद्योग को नियमों में बांधना है। यदि एक नियामक संस्था को अपना काम करने के लिए सुप्रीम कोर्ट की फटकार सुननी पड़े तो यह व्यवस्था के लिए गंभीर सवाल है। सरकार ने यदि स्पष्ट लेबलिंग नियम लागू किए तो यह सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए बड़ा कदम होगा। अगर देरी जारी रही तो न्यायपालिका को हस्तक्षेप करना पड़ेगा।

विकास का मतलब केवल ऊंची इमारतें और तेज इंटरनेट नहीं है। विकास का अर्थ यह भी है कि हमारी थाली में क्या है, हमारे बच्चे क्या खा रहे हैं और हमें उसके बारे में कितनी सच्ची जानकारी मिल रही है। स्वास्थ्य को बाजार के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता और न ही उसे कॉरपोरेट हितों के हवाले किया जा सकता है। पैकेट पर साफ लिखा सच ही उपभोक्ता को सही चुनाव की ताकत देगा। सुप्रीम कोर्ट की फटकार यदि समय पर असर करती है तो यह भारत की खाद्य नीति और सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण मोड़ साबित हो सकती है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)